Chap-1

Smt. Hansa Mehta Library
S. University of Baroda

प्रथम अध्याय

गुजरात के हिन्दी साहित्य का विहंगावलोकन

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
M. S. University of Baroda

गुजरात के हिन्दी साहित्य का विहंगावलोकन

गुजरात की धरती साहित्य उर्वरा रही है। गुजराती के बाद हिन्दी भाषा को यहाँ सर्वाधिक लोक–सम्मान मिला है, जिस कालावधि से यहाँ गुजराती के बोल जनमानस में गुंजरित हुए है, संभवतः लगभग इसी के आसपास हिन्दी की स्वर लहरियाँ भी इस वायुमंडल में प्रसरित हुई हैं। प्रकारान्तर से व्रजभाषा काव्य–सरिता की लोल लहरियाँ गुजरात प्रदेश की भव्यभूमि को बहुत पहले से अभिसिंचित करती आई हैं, काव्य सृजन के संदर्भ में गुजराती और हिन्दी दोनों ही भाषाएँ समानान्तर रूप से यहाँ विकसित हुई हैं। गुजराती यहाँ की घर–गृहस्थी की, लोक सम्पर्क की और जनमानस की बोली रही है। तो हिन्दी या ब्रजभाषा यहाँ के रसाग्रही हृदयों के अन्तर्वेगों की संवेद्य आवेगों की तथा आत्मीय साहित्य संदर्भों की भाषा रही है।

गुजराती यहाँ की स्वकीया नायिका है, तो हिन्दी या ब्रजभाषा को परकीया की सज्ञा से समझा जा सकता है। परकीया के प्रति रुझान या स्नेहासक्ति के उद्दाम आवेस को समझा या अनुभव किया जा सकता है। गुजराती भाषा यहाँ घर की अपनी है तो हिन्दी यहाँ की पारकी अपनी है। प्रेम के पथ पर सहयात्री दोनों हैं। हमसफर दोनों है, सहचारियाँ दोनों हैं।

गुजराती के साहित्य-स्वर या भाषा के अनुशासन यहाँ हेमचन्द्र सूरी या माणिकचन्द सूरि से प्रारंभ हुए आलेखित हैं जो नरसी मेहता अथवा दयाराम तक संदुष्ट सुनाई देते हैं। अखा, परमानन्द, गोविन्द गिल्लाभाई, दयाराम से लेकर कवि सुन्दरम अथवा शितांशु यशश्चन्द तक गुजराती काव्य मंदाकिनी के तरल-तरंगों मे हिन्दी की लोल लहरियाँ भी सम्मलित रही हैं।

गुजराती भाषा-साहित्य के क्रमिक विकास पर अनेक मनीषी विद्वानों ने विस्तार से चर्चा की है। यहाँ हम हिन्दी के क्रमिक विकास की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते हुए हिन्दी के वर्तमान स्वरूप और उसके आधुनिक प्रदान पर चर्चा करते हुए उसके वर्तमान काव्य सृजन को समीक्षित करेंगे।

गुजरात में विकसित हिन्दी साहित्य की अभिधारा को निदेशित या प्रकाशित करने वाले अनेक विद्वानों ने अपने अभिमत विस्तार से व्यक्त किये हैं। इन विद्वान लेखकों मे कुछ उल्लेखनीय नाम हैं - डॉ अम्बाशंकर नागर, आ. रघुनाथ भट्ट, प्रो. कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह, डॉ मदन गोपाल गुप्त, डॉ. रमणलाल पाठक, डॉ. रामकुमार गुप्त, डॉ किशोर काबरा, डॉ. दयाशंकर शुक्ल, डॉ. महोब्बत सिंह चौहान, डॉ. मालारविन्दम्, डॉ. रमाकान्त शर्मा, डॉ. भगवत शरण अग्रवाल, डॉ. कैलाशनाथ तिवारी, प्रो. भगवत प्रसाद नियाज, डॉ.निर्मला असनानी, श्री जयसिंह व्यथित, डॉ. भगवानदास जैन, डॉ. रानु

मुखर्जी, डॉ द्वारका सॉचीहर, डॉ. सुनीता चन्दात्रे, डॉ. नटवरलाल व्यास, डॉ. विष्णु विराट, प्रो भूपतिराम साकरिया आदि।

इनके अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने अपने-अपने सम्पादित साहित्य के इतिहास ग्रंथों मे गुजरात की हिन्दी सम्पदा को रेखांकित किया है।

गुजरात में व्यापार का मुख्य मथक सूरत, खंभात, कच्छ-भुज आदि नगरों में अवस्थित थे। अतः देश के अधिकांश अंचलों से व्यापारी वर्ग यहाँ आते थे। जिनमें अधिकांश हिन्दी भाषी होते थे। जो अपने साथ हिन्दी के संस्कार तथा हिन्दी की लोक-सस्कृति को लाते थे। हिन्दी भाषा का सहज प्रसार इन व्यापारियों के माध्यम से भी हुआ था। दूसरे सूत्र के रूप में यहाँ आने वाले मायावर फकीर, साधू-संत, मुल्ला, मौलवी, धर्माचार्यो आदि भी सामान्य रूप से हिन्दी की ही आंचलिक बोलियों से सम्पृक्त थे। गुजरात में हिन्दी भाषा के बीजांकुर उन्होंने भी सम्पन्न किए हैं।

गुजरात में हिन्दी प्रसार की भूमिका को रेखांकित करते हुए डॉ. अम्बाशंकर नागर के अनुसार ''१५वीं शती से लेकर आधुनिक काल के प्रारंभ तक के गुजरात के अंचल से प्राप्त मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को अध्ययन की सुविधा के लिए हम निम्नलिखित सात भागों में विभाजित कर सकते हैं –

१. वैष्णव कवियों की हिन्दी कविता।

२. स्वामिनारायण-सम्प्रदाय के कवियों की हिन्दी कविता।

३. संत कवियों की हिन्दी कविता।

४. जैन कवियों की हिन्दी कविता।

५. सूफ़ी कवियों की हिन्दी कविता।

६. राजा और राजाश्रित कवियों की हिन्दी कविता।[१]

गुजरात के हिन्दी साहित्य के अतीत को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामकुमार गुप्त ने संवत् १२५० से १९०० विक्रम तक के समय को दो भागों में बाँटा है –

१. प्रस्तावना काल : सं. १२५० से १५५० तक

२. मध्यकाल : सं. १५५० से १९०० तक

(अ) पूर्व मध्यकाल (सं. १५५० से १७५० वि.)

(ब) उत्तर मध्यकाल (सं. १७५० से १९०० वि.)[२]

बारहवीं शताब्दी से पूर्व का साहित्यक्रम व्यवस्थित रूप से नहीं मिलता किंतु बारहवीं शताब्दी से नरसिंह मेहता की उत्पत्ति तक का समय गुजरात मे भाषा की उन्नति का समय रहा। नरसिंह मेहता की उत्पत्ति से पहले तक गुजरात में अपभ्रंश भाषा मे साहित्य–रचना होती रहीं जिसमें से अधिकांश साहित्य जैन कवियों द्वारा रचा गया। उद्योतन सूरि (७७९ ई.) की 'कुवलयमाला' अपभ्रंश में लिखा एक उत्तम ग्रंथ है। यह प्राकृत में है जिसमें अपभ्रंश के पद आए हैं, साथ में गद्य का भी कहीं–कहीं समावेश हुआ है। हेमचन्द्र से एक या दो शताब्दी पूर्व हुए कवि धनपाल ने २२ संधियों में एक अपभ्रंश–काव्य की रचना की जिसका नाम 'भविस्सत्त कहा' या 'पञ्चमी कहा' है।

हेमचन्द्र में अपने व्याकरण में सरल और सुन्दर अपभ्रंश भाषा में स्वयं के तथा दूसरे कवियों के पौराणिक, धार्मिक, उपदेशात्मक श्रृंगारिक तथा वीर भाव से युक्त उद्धरण दिये हैं। एक उदाहरण देखिए –

''भल्ला हुआ जो मारिआ, वहिणि म्हारा कंतु।

लज्जेजंतु बयंसियहु, जइ भग्गा घर एंतु।।''[३]

'मुञ्जराज प्रबन्ध' में भी अपभ्रश के उत्तम दोहे मिलते हैं –

''गय गय रह गय तुरय गय, पायक्कडा नि भिच्च।

सग्गर् ठिय करि मन्तणउं, मुहुन्ता रुद्दाइच्च।।[४]

इसमें मुंज कहता है – हे रुद्रादित्य ! हाथी, रथ, घोडे, योद्धा – इन सबसे रहित होकर बिना सेवकों के मैं यहाँ खडा हूँ, मुझे अपने पास बुला लो। तुम स्वर्ग में हो और मैं तुम्हारी ओर मुँह करके खडा हूँ।

ये दोहे छोटे, अत्यन्त मधुर तथा सबल शैली में लिखे गये हैं।

'भरतेश्वर बाहुबलिरास' प्रथम प्राप्य ग्रंथ है जिसकी रचना शालिभद्र सूरि ने ११८५ ई. में की थी। ये भीमदेव द्वितीय के समय पाटण में हुए थे। इसमे भरत और बाहुबलि के साथ तीर्थकर ऋषभदेव के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। बाद में बाहुबलि अपने तप और त्याग के बाद ज्ञान प्राप्त करता है। इसमें वीर रस की प्रधानता है और अन्त में शान्त रस है। दोहा, सोरठा, रोला, चौपाई आदि मात्रामेल छन्दो की भाँति ठवणी की २०३ कडियों में इनकी रचना हुई है।

जैनों द्वारा सैंकड़ों की संख्या में रास और प्रबन्ध लिखे गए। ये रचनाएँ काव्य तत्व के अभाव तथा पूर्व की रचनाओं का अनुकरण करने के कारण आकर्षित नहीं करती तथापि भाषा एवं भाषा–विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

महेन्द्र सूरि के शिष्य धम्म द्वारा रचित 'जम्बूस्वामी रास' में सीधी–सरल भाषा में जैन साधु जम्बूस्वामी का जीवन चरित लिखा गया है। विजयसेन सूरि का 'रेवन्तगिरि रासु' इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ ग्रंथ है। इसमें काव्य–तत्व के साथ गेयता और अभिनेयता भी है।

विनयचन्द्र सूरि की १४वीं शताब्दी की रचना **'नेमिनाथ चतुष्पदिका'** मे लिखा बारहमासी गीत अब तक प्राप्त सर्वप्रथम बारहमासी गीत है। इसमें नायक–नायिका का थोडे वियोग के पश्चात् पुनर्मिलन होने से विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता है। इसी समय अज्ञात कवि द्वारा रचित **'सप्तक्षेत्रि रासु'** भी मिलता है, जिसमें धार्मिक कृत्यों का वर्णन मिलता हैं। जिनेश्वर सूरि का विवाहलु भी मिलता है। 'पेथड रास' में पाटण के समीप सेडेर के पेथडशाह द्वारा संघ निकालने का वर्णन है। इसी प्रकार स. १३६३ में रचित **'कछूलीरास'** में उदयसिंह सूरि की वीरता का वर्णन मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्यों की सूचना भी इससे मिलती है।

अपभ्रंश में रचित धवल भी मिलते है जिनमें से एक में जिनप्रभसूरि की स्तुति की गई है। धवल विशेष अवसरों पर गाये जाने वाले गीत है।

इस काल में रची गई फागु रचनाओं में अब तक प्राप्त सर्वप्रथम फागु १४वीं शताब्दी में लिखा **'सिरिथूलिभद्द फाग'** है। इसमें स्थूलिभद्र के राजनर्तकी कोशा से प्रेम और बाद में पश्चाताप के बाद सन्यास लेने की कथा है।

इस शताब्दी का दूसरा फागु 'नेमिनाथ फागु' है।

जैनेतर काव्यों में सिद्धपुरपाटण के औदिच्य ब्राह्मण कवि असाइत कृत **'हंसाउली'** उल्लेखनीय (१३७१ ई. में रचित) है जिसे हिन्दी का प्रथम ज्ञात प्रेमाख्यानक काव्य माना गया है।[५]

नरसिंह मेहता :

गुजरात के प्राचीन प्रमुख कवियों में नरसिंह मेहता का सर्वोपरि प्रसिद्ध है। गुजराती की लोकवाणी में इन्हें **'नरसिंह मेहता'** कहा जाता रहा है। इन्हें गुजराती के आदि कवि

का भी विरद प्राप्त हुआ है। नरसिंह मेहता एक वडनगरा नागर ब्राह्मण (गृहस्थ) थे। इनका जन्म जूनागढ के तलाजा गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम कृष्णदास तथा माता का नाम दयाकुंवर था। इनके जीवन काल के सम्बन्ध में विद्वानों मे मतभेद है। एक तरफ कवि नर्मदा शकर, ईच्छाराम देसाई, श्री काँटावाला तथा श्री के का शास्त्री विद्वानों के अनुसार संवत् १४६९-७० इनका जन्म समय माना जाता है, तो दूसरी तरफ क.मा मुंशी, श्री नरसिंह दीवटिया, श्री जगदीश गुप्त, डॉ. अम्बाशंकर नागर संवत् १५३० के बाद का समय मानते हैं।

नरसिंह मेहता के पदों पर जयदेव कृत 'गीत गोविंद' का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। डॉ रमणलाल पाठक ने गुजराती साहित्य परिषद्, अहमदाबाद द्वारा १९७६ में प्रकाशित 'गुजराती साहित्य नो इतिहास, खण्ड-२' में पृ. ९१ पर उमाशंकर जोशी द्वारा नरसिंह का जन्म वर्ष सन् १४१४ के आसपास और मृत्यु वर्ष १४८० के आसपास को स्वीकार किया है। इस प्रकार नरसिंह मेहता को पन्द्रहवीं शताब्दी का मानना उचित लगता है।

नरसिंह मेहता ने 'सुदामाचरित्र', 'गोबिन्द गमन', 'दानलीला', 'चातुरिओं', 'सुरत-संग्राम', 'रास-सहस्त्रपदी', 'श्रृंगारमाला', 'वसन्तनां पदो', 'हिंडोलानां पदो', 'कृष्ण जन्मनां पदो', 'हारमाला', 'शामलदासनो विवाह' आदि छोटी-बड़ी २७ रचनाएँ लिखी हैं। इनके द्वारा रचित कुछ हिन्दी ब्रजभाषा के पद भी मिलते हैं, जिनकी प्रामाणिकता संदिग्ध ही है। नरसी द्वारा हिन्दी में रचित कहे जाने वाले पद का उदाहरण देखिए -

''म्हाने पार उतारो जी, थांने निज भक्तन की आन।

हमरे अवगुन नेक न चितवो, अपनो ही करी जान ।।१।।

* * * *

हों तो कुटिल अधम अपराधी, नहिं सुमरियो तेरी नाम।

नरसी के प्रभु अधम उधारन, गावत वेद पुरान।।४।।''[६]

नरसी मेहता के पदों में उत्कृट प्रेमपूर्ण गोपी भाव के साथ विनय, दैन्य, अनुभूतिपूर्ण ज्ञान एवं वैराग्य का उत्कृट निवेदन हुआ है।

भालण :

भालण कवि गुजराती के ऐसे प्रसिद्ध कवि थे जिन्होंने ब्रजभाषा में भी साधिकार उत्कृष्ट काव्य रचनाएँ की थीं। यहीं से गुजरात में ब्रजभाषा काव्य सृजन का प्रारंभ माना गया है। गुजरात में स्वामी रामानन्द द्वारा प्रचारित राम-भक्ति से प्रभावित हो राम के बाल-जीवन की क्रीड़ाओं के माध्यम से वात्सल्य रस का निरूपण करने के साथ-साथ भालण ने श्री मद्भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित अपने 'दशम स्कन्ध' में गुजराती और ब्रज भाषा में सुन्दर पद-रचना की है। भालण ने राम की बाल-लीलाओं के साथ-साथ कृष्ण लीलाओं का भी निरूपण किया है-

''कौन तप कीनो री माई नंदराणी, कौन.

ले उछंग हरिकूं पय पाबत मुख चुंबन मुख भीनो री माई.

तृप्त भये मोहन ज्युँ हसत हैं तब उमगत अधरहु कीनोरी माई.

जसोमती लटपट पूँछत लागी बदन खेचित बलिनोरी माई.''

भालण का मूल नाम पुरूषोत्तम था। वे गुजरात के पाटण नगर के निवासी थे। इनके पिता का नाम मंगलजी था। वे त्रिवेदी मोढ़ ब्राह्मण थे।

भालण की उपस्थिति लगभग सन् १४२६-१५०० ई. के आसपास मानी जाती है। भालण के समय के बारे में अभी विद्वानों में बड़ा मतभेद है। भालण-कृत 'द्वितीय नलाख्यान' के अनुसार कवि की उपस्थिति संवत् १५४५ (अर्थात् सन् १४८९ ई.) बहुमान्य है। भालण के इस उपस्थिति संवत् और पदों को यदि प्रामाणिक माना जाए, तो इस गुजराती कवि को सूरदास से भी पहले ब्रजभाषा में काव्य-रचना करने का गौरव प्राप्त होता है।[७]

गुजरात के लोकप्रिय कवियों मे भालण को जितना लोक सम्मान मिला है, उतनी ही साहित्यिक प्रतिष्ठा भी इन्होंने अर्जित की है।

गुजराती और ब्रजभाषा में समान रूप से रचनात्मक प्रदान करने वाले साहित्यकारों में कवि भीम (सन् १४८५ में वर्तमान), कवि मांडण (सं. १५३६ में जन्म), शेख बहाउद्दीन 'बाझन' (सं. १४४४ से १५६२), काजी महमूद दरियायी, जैन कवि भट्टारक सकल कीर्ति, हीरानन्द सूरि, ब्रह्मजिन दास, श्रावक देपाल, संघ विमल, ऋषिवर्धन आदि का नाम उल्लेखनीय है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में भक्तिधारा के साहित्यकारों में ज्ञानी जी, निर्वाण साहब, नायाणी भामाराम आदि भी प्रख्यात है। इनमें ज्ञानी जी (जन्म ई. सं. १३९५ में) जैसलमेर के भट्टी राजा मोती सिंह के राजकुमार थे। रामानन्द स्वामी के आग्रह से इन्होंने कबीर साहब का शिष्यत्व ग्रहण किया। इन्होंने ई. सं. १५०२ में जीवित समाधि ली थी। इनकी रचनाओं में **'ज्ञानदीपक चन्द्रयन'**, **'साखी ग्रंथ'**, **'ज्ञान बत्तीसी शब्द पारखी'**, **'रामसार ग्रंथ'**, **'राम महिमा'**, **'कबीर ज्ञानी संवाद'** और कुछ फुटकल पद हैं। अनेक भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण इनकी रचनाओं में हिन्दी, फारसी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत आदि भाषाओं का असर देखा जा सकता है।

निर्वाण साहब का समय ई स १४२१ से १५१४ तक माना जाता है। इनके शिष्यो में सांई सोदात खां, गोपीनाथ, जंभाराम, आभाराम, कवयित्री अन्नपूर्णा प्रमुख है। इनके द्वारा रचित ४० साखियाँ ही उपलब्ध हैं। इन्होंने पद, झूलना, भजन, कुंडलियाँ, साखी आदि की रचना की है। किन्तु इनकी छिटपुट रचनाएँ ही उपलब्ध हैं।

नायाजी (ई. सं. १४५५ से १५३३ तक) का जन्म कोली कुल में हुआ था। इनके पूर्वज और नायाजी स्वयं बहुत बडे लुटेरे थे। सद्गुरु के वचनों से ये भजनिक संत बन गए। इनकी शुद्ध ब्रजभाषा में लिखी १३ साखियाँ मिलती हैं।

भाभाराम का जन्म वसो गॉव (जिला खेडा) में ई. सं. १४४९ में हुआ और मृत्यु सन् १५२३ ई. में हुई। इनके शिष्यों में कीकीबाई, मेघावती, संत मुक्तिराम, गंगासिंह, भोजराज प्रमुख थे। इनकी ब्रजभाषा में लिखी १३ फुटकल साखियॉ मिलती हैं।

१६वीं शताब्दी के गुजरात में ब्रजभाषा के प्रख्यात कवियों की सूची भी पर्याप्त समृद्ध है। इनमें मीराबाई, बैजू बावरा, कृष्णदास अधिकारी, केशवदास कायस्थ, लक्ष्मीदास, ब्रह्मदेव, ब्रेहदेव, ईसर बारोट, साँचा झूला, समर्थदास, दादू दयाल, प्रेमाबाई, अन्नपूर्णा, तेजानंद स्वामी, लोचन स्वामी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

सत्रहवीं शताब्दी में गुजरात के हिन्दी कवियों में गुजरात के रसखान कवि राजे, कायस्थ भगवानदास, पुहकर, शिवानन्द, रामचन्द नागर तथा कवीश्वर देवरामजी आदि प्रख्यात रहे हैं। इसी काल में सूफी कवि शेख मोहम्मद अमीन, वली आदि भी उल्लेखनीय हैं। इनके साथ ही कवि मुकुन्द, चन्द्रावती, अनिसा रोशन, चेतन स्वामी आदि भी प्रसिद्ध हुए हैं।

इसी कालावधि के अखा इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध और उल्लेखनीय कवि हुए हैं।

अखा :

अखा का समय सन् १५९२ से १६६९ ई. तक माना गया है।[८]

गुजरात के ज्ञान मार्गीय कवियों में अखा का मूर्धन्य स्थान है। इनका जन्म जेतलपुर मे हुआ और सुनार जाति के थे। गृह त्याग कर सच्चे गुरु की खोज करते गोकुल गए और वहाँ वल्लभाचार्य के पौत्र गोकुलनाथ जी से कंठी बंधवाकर पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए किन्तु कुछ समय के बाद ज्ञान मार्ग की और उन्मुख हो गए।

डॉ. नागर एवं डॉ. पाठक के मत से – ''अखा की कविता ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का त्रिवेणी संगम है।'' भाषा-शैली के विषय में इनका मत है – ''अखा भाषा शैली की सरलता के पक्षपाती थे। प्रांजलता का अभाव होते हुए भी इनकी वाणी बडी ही सचोट, सारगर्भित एवं हृदयस्पर्शी है। इनकी भाषा संत टकसाल की हिन्दी है। इन्होंने संस्कृत एवं अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग कर उन्हें तोड़ा-मरोड़ा भी है। छंदों की मात्राओं की घट-बढ़ और पदों में लय का अभाव है। इतना होने पर भी अखा की वाणी का महत्व है और आगे भी अक्षुण्ण रहेगा।''

इनकी ग्यारह हिन्दी रचनाओं के नाम डॉ. रामकुमार गुप्त एवं डॉ. नागर ने गिनाएँ हैं। इनकी रचनाएँ हैं – १) संतप्रिया, २) ब्रह्मलीला, ३) जकड़ी, ४) झूलणा, ५) धमार, ६) कुंडलिया, ७) एक लक्ष रमणी, ८) भजन, ९) विभिन्न अंगों में विभाजित १७०० के लगभग साखियाँ, १०) अमृतकला रमेणी तथा ११) पद।

स्वभाषा गुजराती में रचना करने के साथ-साथ अखा ने हिन्दी भाषा में भी पदों, सवैयों तथा विपुल परिमाण में साखियों की रचना की है। इनकी रचना-शैली की उदाहरण देखिए-

''अकल कला खेलत नर ज्ञानी,

जैसे हि नाब हिरे फिरे दसों दिश,

ध्रुव तारे पर रहत निशानी।।''[९]

संतप्रिया :

'संतप्रिया' के दो प्रकरण है जिसमें १३६ छन्दों में कवित्त, सवैया तथा दोहों में काव्य-रचना की है। इसमें बाह्याचारों और रूढ़ियों का विरोध करते हुए मनुष्य को परब्रह्म को पहचानने का उपदेश दिया है।

कवि के मतानुसार गुरु ही गोविंद है और गोविंद ही ब्रह्मज्ञान है –

''गुरु गोविंद गोविंद सोई गुरु गुरु गोविंद गनत नहीं न्यारा।

वैकुंठ ते सुकदेव गुरु बिन आय फिरी भू भाषे सोनारा।।''[१०]

ब्रह्मलीला :

'ब्रह्मलीला' ४८ छन्दों की एक महत्वपूर्ण लघु रचना है। इसमें आदि निरंजन स्वरूप परब्रह्म के रहस्य का निरूपण किया है। स्वयं अखा ने इस कृति की प्रशंसा में कहा है –

''कहे अखा यह ब्रह्मलीला, बड़भागी जन गायेगो ।

हरि हीरा अपने हृदय में अनायास सों पायगो ।।''[११]

अखा ने १०० के करीब हिन्दी पदों की रचना की है। कबीर के 'संतो भाई, आई ग्यान की आंधी' पद की स्मृति दिलाने वाले निम्नलिखित पद में अखा की आत्म

साक्षात्कारजनित आनंद की अभिव्यक्ति के साथ-साथ सर्जनशक्ति का स्पष्ट बोध होता है। यथा -

''ज्ञान घटा चढ़ आई अचानक ज्ञान घटा चढ़ आई ।

अनुभव जल बरखा बड़ी बुंदन, कर्म की कीन रेलाई ।।

* * *

गयो ग्रीष्म अंकुर उगि आये, हरिहर की हरियाई ।

शुक सनकादिक शेष सहराये, सोई 'अखा' पद पाई ।।''[१२]

कबीर १०९ झूलना छन्दों में रचित सूफीशाही इबारत का परिचय कराने वाली महत्वपूर्ण रचना 'झूलना' है जिसमें पंजाबी, फारसी, अरबी और गुजराती मिश्रित भाषा-शैली का परिचय दिया है।

भेष बदल-बदल कर अनेक छल छन्दों के खेल करने वाले इस किरतार को पकड़कर बाँधे रखने मे अखा को जो उत्कट उल्लास होता है उसका संकेत निम्नलिखित पंक्तियो में मिलता है -

'आब, आतश, खाक, वायु तु ही भेश फेर कर तुं ही आया ।

छंदडे कर कर छुप जाता था अब अखा न जाये ब्राह्या ।।४६।।''[१३]

अखा ने दो हजार के करीब साखियाँ लिखी है जो माया, गुरुकृपा, प्रेम प्रीछ, चेतना, ज्ञानी, भक्ति, आत्मज्ञान, अनभे आदि विभिन्न अंगों में विभक्त है। इनकी साखियों में भाषा की प्रौढ़ता, प्रांजलता, समासशक्ति का बोध होता है। एक उदाहरण देखिए-

''अखा' दुनियां को कहा कहे, जो फेर बहु लक्ष मांह्य;

ज्यूं अधोगति नीर की, तेज उर्ध्व गति जाय ।।१९।।''[१४]

(सहेज शक्ति अंग)

अखा की एक अन्य महत्वपूर्ण रचना 'जकड़ी' है। अब तक ३९ जकडियॉ मिली हैं। पचरंगी चोला पहन कर अपने सांईयां के साथ खेलने को अखा की आत्मा तडपती है–

''हुं सांइयां तुज साथे रे तुं ही मेरी आथे रे;

तें खेल बनाया हाथे रे पंचरंगी मेरा चोरा रे ।।१३।।''[१५]

अखा के समकालीन शासक जहॉगीर थे। इनके प्रमुख शिष्यों में लालदास, हरिकृष्ण महाराज, जीतामुनिनारायण, कल्याणदास विशेष उल्लेखनीय हैं।[१६]

सत्रहवीं सदी के प्रख्यात ब्रजभाषा–गुजराती कवियों में लालदास, हरिकृष्ण महाराज, जीतामुनिनारायण, कल्याणदास आदि प्रख्यात हैं। अन्य लोकप्रिय कवियों में मेकनदास, गोपालदास, मुकुन्ददास, कृष्णदास, चन्द्रवती, अनीसा रोशन, चेतन स्वामी आदि प्रसिद्ध हैं।

कच्छ के कबीर के रुप में दूलेराय काराणी भी इसी कालावधि में प्रख्यात ब्रजभाषा कवि थे। इनकी ब्रजभाषा की कविताएँ कम ही परिमाण में प्राप्त हुई हैं।

अखा के समय में ही गोपालदास कवि हुए जिन्होंने ज्ञानप्रकाश, गोपालगीता आदि ब्रजकृतियों की रचना की थीं।

इसी काल में प्रणामी सम्प्रदाय के मुकुन्ददास, कबीर पंथी कृष्णदास थे, जो अष्टछाप के कृष्णदास से पृथक थे तथा जिनके रचे हुए ग्रंथ ज्ञान प्रकाश, यदुनन्दन तथा रघुवंश मणि प्राप्त होते हैं।

इसी तरह चन्द्रवली, अनिसा रोशन, चेतन स्वामी आदि भी उल्लेखनीय हैं।

अठारहवीं शताब्दी के हिन्दी कवियों में लालदास, अनुभवानन्द, मूलदास, भक्त खोजीराम, मूलजी भगत, खुमानबाई, भादूदास, बालक दास, राधो भगत, कल्याणदास, जगदीशराज, जगजीवन कवि आदि का उल्लेख डॉ. रामकुमार गुप्त ने किया है।[१७]

इसी कालावधि के स्वामी नारायण सम्प्रदाय के मूल संस्थापक आत्मनन्द प्रख्यात साहित्यकार हुए हैं। इन्हीं के साथ सहजानन्द स्वामी, मुक्तानन्द जी, ब्रह्मानन्दजी, प्रेमानन्दजी, निष्कुलानन्दजी आदि प्रख्यात स्वामी नारायण सम्प्रदाय के अनुयायी अष्टछापी कवियो में गण्य हैं।

अठारहवीं शताब्दी के ही वस्तो विशम्भर, धीरो, प्रीतम, गिरिधर, त्रीकमदास, गबरीबाई, भक्त कवि रत्नो भावसार, गुलाबदास, तथा फकीर अनवर खान का उल्लेख डॉ. रानू मुखर्जी ने किया है।[१८]

इसी समय के युग प्रवर्तक गुजरात के ब्रजभाषा संरक्षक एवं रचनाकार महाराजा लखपत सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

महाराजा लखपत सिंह कच्छ के राजा थे। इनका समय सन् १७१० से १७६१ माना गया है। महाराव लखपत सिंह साहित्य एवं ललित कलाओं के अनन्य प्रेमी थे। कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के अनुसार – ''महाराव लखपत सिंह की प्रतिभा बहुमुखी थी, उनका व्यक्तित्व बहु आयामी था। वे केवल कवि ही नहीं थे, महान संगीतज्ञ, कुशल नृत्य विद्या विशारद, सफल चित्रकार अनेकानेक उपयोगी कलाओं के मर्मज्ञ एवं उन्नायक, राजनय कोविद एवं अप्रतिम योद्धा थे।'' इन्होंने ब्रजभाषा के प्रसिद्ध विद्वान एवं जैन आचार्य कनक कुशल को कच्छ में निमंत्रित कर **ब्रजभाषा काव्य पाठशाला** की स्थापना की जो महाराव लखपत सिंह जी के साहित्य–मर्मज्ञ होने का परिचायक है। आचार्य कनक कुशल ने कई ग्रंथों की रचना के लिए लखपत सिंह जी को प्रेरित किया था। इन्होंने ब्रज हिंदी में

'सुरतरंगिणी', (सन् १७३७ ई. मे सगीत शास्त्र सम्बन्धी रचना), 'लखपति श्रृंगार' या 'रसतरंग' (१७४७ ई में रचित नायक-नायिका भेद सम्बन्धी श्रृंगार रस का ग्रंथ), 'सदाशिव विवाग' (१७६१), 'मृदंग मोहरा', 'सुन्दर श्रृंगार', 'लखपति भक्ति विलास' (१७६०) और फुटकल पदों की रचना की है।

'लखपति श्रृंगार' नामक ग्रंथ मे इन्होने आठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है जो कहीं-कहीं मर्यादा का अतिक्रमण करता-सा प्रतीत होता है। विश्रब्ध-नवोढ़ा नायिका का एक उदाहरण देखिए।

''सीस सों सीस, मुखै मुख सों, छतियाँ अपनी छतियाँ बरजोरी
बाहुसों बाहु लपेटी लई कटिसों कटी गाढी करी है किशोरी
जोंघसों जंघनि पिंडिसों पिंडन बाँधे पगेपग घुंघरु डेरी
राति की रीझ लखी मैं सखी तब तें मोरे चित्त में चित्त विहोरी''[१९]

इसी तरह मेहरामण सिंह जी भी गुजरात के प्रसिद्ध आचार्य कवि के रूप मे प्रख्यात हुए हैं।

मेहरामण सिंहजी :

महाराव मेहरामण सिंह (वि. सं. १८१३-१८५२) राजकोट (सौराष्ट्र) के जाडेजा राजकुमार थे। उन्होंने 'प्रवीण सागर' नामक एक प्रेमाख्यानक महाकाव्य की रचना की। इसकी पहली ६० लहरें मेहरामण सिंह द्वारा तथा अपूर्ण ग्रंथ के शेष अंशों का सम्पादन-संग्रह बाद में श्री दलपत डाह्याभाई और गोविंद गिल्लाभाई ने किया। इसमें नवरस-भेद, नायिका-भेद निरूपण के साथ ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति, काव्यशास्त्र शकुन शास्त्र, नाट्यशास्त्र आदि विभिन्न उपयोगी शास्त्रों का वर्णन मिलता है।

८४ सर्गो के इस बृहद् प्रबन्ध-काव्य में परम्परागत शैली में मंगलाचरण, दोहा, चौपाई, तोमर, चामर, सवैया, झूलना आदि प्रचलित एवं अप्रचलित लगभग ४० छन्दों का प्रयोग विभिन्न भाषाओं-मराठी, कच्छी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू आदि तथा भाषा-शैलियों का प्रयोग हुआ है। एक भाषा प्रयोग देखिए-

मथुर सखी ''जाहिको या जगत में, जाहिरहे ''जयपुर''

भाग्यको ''उदयपुर'', भलो जाको आज है।

जाहिको सेना में शस्त्राधारी जन ''जोधपुरे'',

भंडार ''भरतपुर'' सुर को समाज है।.....।।[२०]

(लहर ७६ - यह अंश दलपतराम डाह्याभाई द्वारा रचित है।)

सम्पूर्ण ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखा है परन्तु कहीं उसके स्वरूप में डिंगल तो कहीं ब्रजभाषा तो कहीं खड़ी बोली की झलक मिलती है।

महाराजा लखपत सिंह की साहित्य को सर्वोत्कृष्ट देन की। ब्रजभाषा काव्य पाठशाला की स्थापना।

ब्रजभाषा काव्य पाठशाला :

कच्छ (गुजरात के महाराव लखपत सिंह ने अपने शासन काल में अठारहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा के प्रचार एवं साहित्य-सृजन हेतु एक पाठशाला की स्थापना की थी। इससे हिन्दी भाषी गुजरात प्रदेश में ब्रजभाषा का महत्व बढ़ा और प्रचार भी हुआ। हिन्दी-काव्यधारा के विकास में इसका महत्व अवर्णनीय है। इस पर डॉ. निर्मला आसनानी ने स्वतन्त्र शोध ग्रंथ लिखा है।

महाराव लखपत सिंह ने ब्रजभाषा एवं साहित्य के विद्वान आचार्य कनक कुशल एवं उनके शिष्य कुँवर कुशल को उनकी विद्वता से प्रभावित होकर कच्छ आमंत्रित किया और उन्हें 'रेहा' नामक जागीर एवं भट्टारक की पदवी से अलंकृत कर काव्यशाला के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। करीब सवा सौ वर्षो तक यह पाठशाला 'कुशल' शाखा के जैनाचार्यों के संचालन में रही। इनमें कनक कुशल, कुँवर कुशल, वीर कुशल, राज कुशल, जय कुशल, धर्म कुशल, वल्लभ कुशल, जीवन कुशल, भक्ति कुशल आदि हुए। कालांतर में यह पाठशाला जैनेतर आचार्यो को सौंपी जिनमें आचार्य प्राणजीवन, हम्मीर जी खडिया, केशव अयाची, जाड़ेजा कवि उन्नड़जी, जीवराम अजरामर आदि पाठशाला के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए शंभुदान अयाची पाठशाला के अन्तिम आचार्य थे।

इस पाठशाला का पाठ्यक्रम ५ से ७ वर्ष का था। प्रवेश आयु १४ से ३० वर्ष की तथा भोजन-निवास, शिक्षा आदि भी निःशुल्क थे। यह पाठशाला अनेक अर्थों में विशिष्ट थी। इसकी पहली विशेषता कि यह आज से २५० वर्ष पूर्व ब्रजभाषा की पाठशाला सुदूर अहिन्दी भाषी कच्छ प्रदेश में स्थापित हुई।

इसकी दूसरी विशेषता यह कवि बनाने की काव्यशाला थी। महाराव लखपत सिंह के अनुसार अन्य कलाओं की तरह प्रतिभा को प्रशिक्षण द्वारा निखार कर कवि भी बनाए जा सकते हैं। इस पाठशाला के पढ़े सैकड़ों छात्र कवि के रूप में प्रख्यात हुए और रजवाड़ों में राजकवि के रूप में नियुक्त हुए। इस पाठशाला के प्रशिक्षित कवियों में स्वामीनारायण सम्प्रदाय के स्वामी ब्रह्मानंद और गुजराती साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि दलपतराम भी हैं।

कच्छ के महारावों के साथ-साथ इसके आचार्यों एवं अध्यापकों द्वारा कविता के साथ-साथ काव्यशास्त्र तथा शिक्षा विषयक ग्रंथों की ब्रजभाषा में रचना की तथा अनेक

ग्रंथों की टीका व दीपिकाएँ लिखी। इन ग्रंथों में कुँवर कुशल कृत 'लखपति जससिंधु', हम्मीर जी रत्नू कृत 'लखपति पिंगल', उन्नड़जी कृत 'भागवत पिंगल' उल्लेखनीय है। टीकाओं मे आचार्य कनक कुशल कृत 'कविप्रिया', एवं 'रसिक प्रिया' की टीका, महाराव लखपति कृत 'सुन्दर श्रृंगार' एवं 'बिहारी सतसई' की टीका, जीवाभाई शामल कृत 'जगत विनोद टीका' और हम्मीर दान लाखाजी मोतीसरा कृत 'नागदमन टीका' उल्लेखनीय है।

इस पाठशाला में ब्रजभाषा में काव्य के दंशागों, व्याकरण, पिंगल, अलंकार, नायिका भेद आदि पर विशेष बल और अभ्यास करवाया जाता था। पाठ्यग्रंथों में 'पृथ्वीराज रासो', 'भाषाभूषण', 'सुन्दर श्रृंगार', 'बिहारी सतसई', 'सूरसागर', 'रामचरितमानस' जैसे ग्रंथ थे। अन्त में मौखिक तथा लिखित परीक्षा होती थी तथा उत्तीर्ण होने पर 'कवि' की पदवी से सम्मानित किया जाता था। कच्छ के दीवान मणिभाई जसराज जैसे साहित्य-मर्मज्ञ ने पाठशाला के परीक्षार्थियों को 'बावनी' ग्रंथ-रचना पर पुरस्कार देने की परम्परा प्रारम्भ की। गुजरात में रचित ६५ बावनियाँ प्रकाश में आई हैं जिनमें 'उपदेश बावनी', 'प्रबोध बावनी', 'विरह बावनी', 'वैराग्य बावनी', 'खेंगार बावनी', 'हम्मीर बावनी', ' दलपत सतसई' उल्लेखनीय हैं।

डॉ निर्मला आसनानी ने लिखा है, ''कच्छ की काव्य पाठशाला रीतिकालीन साहित्य की सभी परम्पराओं एवं प्रवृत्तियों से अलंकृत थी। ..... काव्यांगों एवं भाषा शैली के निरूपण में ही ये कवि पारंगत नहीं थे, बल्कि इतर ज्ञान में भी इनका फलक विस्तृत था। काव्यशास्त्र के अलावा इन कवियों ने ज्योतिष, संगीत, नृत्य, अश्वशास्त्र वैद्यक, कामशास्त्र, स्वरोदयशास्त्र, योगशास्त्र, दर्शन-पुराण एवं सामुद्रिक शास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रंथ रचे थे।''[२१]

इस सस्था से कवि-पद प्राप्त करने के बाद यशस्वी बनने वाले कवियों में कृतकृत्य हृदय से इस पाठशाला को उत्कृष्ट एवं उचित अंजलि देते हुए कवि न्हाना लाल दलपत ने 'कविश्वर दलपतराय' नाम ग्रंथ में कहा है-

'कच्छ राज्य का सिंहासन तो भुजिया है, पर उसका कीर्ति-मुकुट तो भुज की ब्रजभाषा पाठशाला है।''[२२]

इस पाठशाला के आश्रयदाताओ, आचार्यों एवं कवियों ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना करके भारत के पश्चिमी क्षेत्र में ब्रजभाषा एवं रीति काव्य-परम्परा का प्रवर्तन किया था। इस पाठशाला के आश्रय में रचित विपुल साहित्य भावों की विदग्धता, डिंगल-पिगल भाषा की भंगिमा, रस, छन्द, अलंकारों तथा काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों के अनुरूप विशिष्ट एवं विविधता से पूर्ण है। अनेक देवी-देवताओं की स्तुति के साथ ज्ञान, वैराग्य एवं नीति परक छन्दों द्वारा इन कवियों ने तत्कालीन समाज में नव-जागरण की चेतना का संचार भी किया है।

श्री दूलेराय काराणी ने अपने ग्रंथ 'कच्छना संतों अने कविओं' में लिखा है- ''कवि श्री लखपत सिंह जी ने इस संस्था की स्थापना करके समस्त देश पर एक महान उपकार किया है। जहाँ कवि होने का प्रमाणपत्र प्राप्त किया जा सके, ऐसी एक भी संस्था भारत वर्ष में कहीं नहीं थी। इस संस्था की स्थापना करके महाराव ने समस्त देश की एक बड़ी कमी दूर कर दी..... इस संस्था से निकलने वाले कवियों ने सौराष्ट्र और राजस्थान के अनेक प्रदेशों में अपना नाम प्रख्यात कर इस संस्था को यशस्वी बनाया है।''[२३]

कच्छ के चारणों की रत्नू शाखा के कवि हमीरदान ने 'गुण पिंगल प्रकाश' (१७१२) और 'लखपत गुण पिंगल' (१७४०) नामक ग्रंथ लिखे हैं।

कवि हरिचरन दास ने सन् १७९४ में 'सभा प्रकाश' ग्रंथ की रचना की।

उदयपुर के महाराणा जयसिंह के आश्रित कवि अहमदाबाद के दलपतिराय बंसीधर (१७३१ मे विद्यमान) नामक कविद्वय ने 'अलंकार रत्नाकर' (१७४२) की रचना की है। प्रस्तुत ग्रंथ में ४ तरंग हैं। प्रथम तरंग ग्रंथ पीठिका निरूपण में १९ दोहे और १ कवित्त को मिलाकर कुल २० छन्द है। प्रस्तुत ग्रथ मे निर्माण-विषयक कवि की उक्ति-

''कीने रसमय रसिक कवि सरस बढ़ाय विवेक ।

छाया लहि गिरिबान की भाषा ग्रंथ अनेक ।।५।।

* * *

मेदपाठ श्रीपाल कुल विप्रा महाजन काय ।

बासी अमदाबाद के बंशी दलपतिराय ।।१०।।[२४]

महाजन जाति के बंसीधर के नाम से भी 'श्रृंगार-सिंधु' नामक स्वतन्त्र ग्रंथ मिलता है। भरूच के सुप्रसिद्ध कवि कृष्णदास के वंशज भगवानदास रिझवार ने 'श्रृंगार सिंधु' की रचना १७२४ ई में की थी। अन्य रिझवार नामक कवि द्वारा रचित 'अंलकारादर्श' ब्रजभाषा में मिलता है। ब्रजभाषा पाठशाला में दीक्षित कवि गोप ने 'काव्य प्रभाकर' ग्रंथ की रचना की थी। इसे 'रुक्मिणी हरण' के नाम से भी जाना जाता है। श्रीमाली ब्राह्मण कुलोत्पन्न दलपतराम (सन् १७९१ ई.) ने 'दलपति-विलास' नामक स्वतन्त्र ब्रजभाषा ग्रंथ की रचना की है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध ब्रजभाषा कवियों में आचार्य कवि दयाराम का नाम प्रसिद्ध है। चांणोद निवासी रससिद्ध भक्त कवि दयाराम गुजरात के उत्तर मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों में निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ और अप्रतिम है। इस कवि को ब्रजभाषा के प्रति अनुराग था। इस गुजराती कवि ने ब्रजभाषा में ४७ ग्रंथों और १२००० स्फुट पदों की रचना की।

ये गुजराती के अतिरिक्त संस्कृत, ब्रज, खडीबोली, मराठी, तमिल, तेलगू, फारसी इत्यादि भाषाओ के भी ज्ञाता थे। डॉ पाठक ने इनके द्वारा रचित कुल ४७ ग्रंथों के नामों का वर्णन किया है। इनमें से कवि के उपलब्ध ब्रजभाषा ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है–[२५]

'सतसैया', 'रसिक रंजन', 'क्लेश कुठार', 'भक्ति विधान', 'कौतुक रत्नावली', 'विज्ञप्ति–विलास', 'वस्तुवृन्द दीपिका', 'पिंगल सार', 'सिद्धान्त सार', 'सम्प्रदाय सार', 'पुष्टिपथ सार मणिदास', 'पुष्टिभक्ति रूप मालिका', 'श्री कृष्ण स्तवनामृत', 'श्री कृष्ण स्तवन चन्द्रिका', 'नाम प्रभाव बत्तीसी', 'हरिदास मणिमाला', 'श्रीमद् भागवत अनुक्रमणिका', 'चातुर चित विलास', 'वृन्दावन विलास', 'अनुभव मंजरी', 'हरिस्वप्न सत्यता'।

श्रीमती वन्दना खण्डेलवाल ने दयाराम के चार अन्य उपलब्ध ग्रंथों का भी उल्लेख किया है– 'मूर्ख लक्षणावली', 'प्रस्ताव चन्द्रिका', 'श्री कृष्णअकलचरित चन्द्रिका' और 'माया खण्डन'।[२६]

डॉ. रानु मुखर्जी ने दयाराम के 'रसथाल' नामक ग्रंथ में एक अन्य 'साखी–दूहा' कृति का उल्लेख किया है। यह ब्रजभाषा में लिखा एक स्वतन्त्र ग्रंथ है जिसमें इस ग्रथ के नामकरण का उल्लेख कवि द्वारा इस प्रकार किया गया है–

''वैष्णों वल्लभी साठो देश, सब हरिजन को दास,

साखी दुहा अस नाम धर्यो, श्री कृष्ण मिलन की आस. ।।२४३।।''[२७]

डॉ. रानु मुखर्जी ने इस ग्रंथ का उल्लेख करते हुए इसे अपनी 'निजी देन' कहा है।[२८]

अपने विषय में कवि दयाराम ने स्वयं अपने ग्रंथ 'अनुभव मंजरी' में अपनी जन्माक्षर (जन्म पत्रिका) प्रस्तुत की है। उसी को प्रमाण मानकर उनका जन्म शनिवार तदनुसार १६ अगस्त सन् १७७७ ई. को निश्चित होता है। इनका मूल नाम दयाशंकर, पिता का नाम प्रभुराम भट्ट और माता का नाम महालक्ष्मी था। इनका निधन सोमवार तदनुसार ३१ जनवरी, १८५३ ई. को डभोई में हुआ। इन्होंने श्री नाथद्वारा के गोस्वामी श्री वल्लभ जी महाराज से पुष्टिमार्ग की विधिवत् दीक्षा ली थी और तभी से दयाशंकर 'दयाराम' बने।

सतसैया :

गुजरात में 'दयाराम सतसई' के प्रथम शास्त्रीय सम्पादन एवं सटीक प्रकाशन (साहित्य भवन, इलाहाबाद से हुआ है) का श्रेय डॉ. अम्बाशंकर नागर जी को है। कवि दयाराम की हिंदी-कृतियों में 'सतसैया' या 'सतसई' सर्वोत्तम कृति मानी जाती है। यह ग्रंथ संवत् १८७२ मे लिखा गया जिसका उद्देश्य श्री कृष्ण को रिझाना था। इसमें कुल ७३२ दोहे हैं जिसमें भक्ति के अतिरिक्त श्रृंगार, प्रेम, नायिका-भेद, काव्यचातुर्य, गणित आदि के सुन्दर उदाहरण हैं। यह ग्रंथ १५ प्रकरणों में विभक्त है।

'दयाराम सतसई' में मुख्यतः भक्ति, नीति और श्रृंगार विषयक दोहे है। एक नीति-विवेक विषयक दोहे का उदाहरण देखिए-

''बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ ।

कहत धतूरे सौं कनकु, गहनों गढ्यो न जाइ ।।१९१।।[२९]

रसिक रंजन :

'रसिक रंजन' दयारम का हिन्दी भाषा का दूसरा सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। कवित्त शैली में रचित २८० छंदों का यह ग्रंथ १७ प्रकरणों में विभक्त है जिनमें कृष्ण के प्रति अनन्यता, भगवदाश्रय, दीनता, कृपा, ईश्वरता, भागवद्इच्छा, विज्ञप्ति प्रार्थना, स्तुति है। 'रसिक रंजन' में कवि मुँहलगे भृत्य की भाँति भगवान को चुनौती देते हुए कहता है–

''रंक जानि दयाकूं डूबोओंगे जो दयानाथ ।

अकेलो नहि डूबूं लेते बर्दकू डुबाऊंगा ।।''[३०]

वस्तु वृन्द दीपिका :

यह ग्रथ गुजराती में 'दयाराम काव्य सुधा' में छपा है। दयाराम का तीसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ 'वस्तुवृन्दादीपिका' (सं. १८७४) है जिसमें उन्होंने १ से १७८ तक की संष्या को लेकर, प्रत्येक अंक की वस्तुओं का सम्बन्ध श्री कृष्ण से दिखाया है।

दयाराम ने 'नव' संख्या के अन्तर्गत नवरस, नव निधि, नवग्रह, नव नंद, नव योगी, नव दुर्गा, नव खण्ड, नव शालीग्राम चरणामृत, नवग्रह के रूप नवरत्न, नवधातु, नव नागकुल तथा विरही के नव लक्षण दिए हैं।

'क्लेश–कुठार' गुजराती में 'दयाराम काव्य मणिमाला', भाग एक में छपा है। इस ग्रंथ का मूल आशय चित्त की चिन्ता दूर करना तथा श्री कृष्ण पर प्रीति उपजाना है।

'वृन्दावन विलास' में कवि ने कृष्ण को ''श्री वृन्दावन अस ध्यैये। प्रीतम प्यारी रस पैयें।।'' कहकर उनके विलास का चित्रण किया है। प्रबन्ध बद्धता, रागबद्धता, तालबद्धता, छन्दबद्धता एवं चित्रात्मकता आदि कलापक्ष की दृष्टि से यह कृति समृद्ध है।

दयाराम की विभिन्न कृतियाँ 'दयाराम काव्य मणिमाला' और 'दयाराम काव्यसुधा' के विभिन्न भागों में छपी हैं। दयाराम ने फुटकल पदों में कृष्ण लीला के अनेक प्रसंगों का वर्णन किया है। दयाराम ने 'रेखता' छन्द शीर्षक देकर जो काव्य-रचना की है उसमे उर्दू-फारसी भाषा की शब्दावली युक्त खडी बोली है। दयाराम के सभी पद विभिन्न राग-रानिनियो मे निबद्ध हैं।

ब्रजभाषा मे काव्य-रचना करने वाले गुजरात के वैष्णव कवियों की सुदीर्घ परम्परा के कवियों में कृतियों के परिणाम एवं काव्योत्कर्ष की दृष्टि से दयाराम का स्थान अप्रतिम एवं सर्वश्रेष्ठ है।

इसी काल के श्री नृसिंहाचार्य, अर्जुन भगत, संत महात्यमराम, निर्मल दास, ब्रह्म ज्ञानी, नागर संत कवि मनोहर दास, संत कवि भोजो भगत, पेटलाद के कवि छोटम, जामनगर के महाराज रिड्मल की राजकुमारी जामसुता प्रताप बाला, दीन दरवेश, मीर मुराद, मानसिंहजी, जीतामुनिनारायण, संत कल्याणदासजी, मोहनदास ब्रह्मचारी, संतराम महाराज, नभुलाल, कुबेरदास, नारायणदास, अचरबा बाई, संत केवलपुरी, संत हरीसिंह, काजी अनवर ज्ञानी, बापू साहेब गायकवाड़ आदि उल्लेखनीय कवि हुए हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वकाल में ब्रजभाषा के आचार्य कवि गोविन्द गिल्लाभाई सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हुए हैं जिनकी प्रख्याति सुदूर हिन्दी प्रदेशों में भी व्याप्त थी।

गोविन्द गिल्लाभाई :

इनका जन्म सन् १८४८ ई. में सौराष्ट्र के सिहोर गाँव में हुआ था। इन्होंने कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला में अध्ययन किया था। इन्होंने हिन्दी के प्रमुख ग्रंथों का अध्ययन भी किया था। इन्होंने ३२ ग्रंथ हिन्दी में लिखे हैं। इनमें प्रमुख रचनाएँ हैं- 'नीतिविनोद', 'श्लेष चन्द्रिका', 'श्रृंगार सरोजिनी', 'षट् ऋतु', 'पावस पयोनिधि', 'समस्यापूर्ति

प्रदीप', 'वक्रोक्ति विनोद', 'पयोधर पचीसी', 'प्रबोध पचीसी', 'श्रृंगार षोडषी', 'भूषण मंजरी', 'शब्द विभूषण', 'नयन मंजरी', 'अंलकारोदधि', 'शिखनख चन्द्रिका', 'विवेक विलास', 'प्रवीण सागर की बारह लहरों', 'लक्षण पचीसी', 'प्रेम पचीसी', 'रत्नावली रहस्य', 'छवि सरोजनी'।

इसी स्वरस्थक्रम में कवि श्री दलपत राय भी प्रसिद्ध हैं।

दलपतराम :

दलपतराम डाह्याभाई त्रिवेदी गुजरात के श्रीमाली ब्राह्मण थे। इनका जन्म सन् १८२० में बढवाण ग्राम में हुआ था तथा देहावसान सन् १८९८ में हुआ था। 'ज्ञान चातुरी', 'श्रवणाख्यान', 'पुरुषोत्तम चरित' तथा 'ब्रज चातुरी' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

इनके समय ही बालाशंकर कंथारिया, सरिता नारायण, हीराचन्द कानजी, पिंगल सिंह, पानाभाई गढ़वी आदि भी प्रख्यात ब्रजभाषा कवि हुए हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही गुजरात में हिन्दी का व्यावहारिक प्रयोग बढ़ने लगा था तथा हिन्दी को गुजरात की द्वितीय आम भाषा के रूप में प्रसिद्ध प्राप्त हो चुकी थी। इस काल के गुजरात के हिन्दी कवियों में रत्नों भगत, सागर महाराज, ओंकारेश्वरी, रंग अवधूत, मगनलाल पटेल 'पतील', उपेन्द्राचार्य नृसिंहाचार्य, अविनाशानन्दजी, दूलेराम काराणी, कुंवर जी नाथु वैद्य, इला माया काण, सौ. इन्दुमति ह. देसाई, कहान जी धर्मसिंह, देवानन्द स्वामी, निर्मलादेवी, नीलकंठ, मनुभाई त्रिवेदी, यशकरण जी अचलदान जी, याकूब खां, मोतीराम कुंडजी, हरिकिशनलाल आदि कवियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिनकी रचनाएँ विभिन्न ग्रंथागारों में सुरक्षित हैं।

संदर्भ

१ मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण – प्रो अंबाशंकर नागर, पृ १०४

२. गुजरात के सतों की हिन्दी साहित्य को देन – डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ ३२

३ पुरानी हिन्दी, पृ १११

४ देखिए – गुजराती साहित्य का इतिहास

५. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन – डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. ३५

६. वही – पृ. ९०

७. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण – प्रो. अंबाशंकर नागर, पृ. १०५

८. देखिए : गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. रमणलाल पाठक, पृ. १०२

९. देखिए : गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी – डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. ८२

१०. अखा : संतप्रिया, संपादक – डॉ. रमणलाल पाठक, पृ. ८

११. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन – डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. १३

१२. अक्षयरस – पद ११, पृ. ९८

१३. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन – डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. १६६

१४. सहज शक्ति अंग – वही, पृ. ९०

१५. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी – डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. ९५

१६ साहित्यकार अखो – प्रकाश हरीभाई रा. देसाई, पृ १६

१७ गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन – डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. ११८

१८ मध्यकालीन हिन्दी–गुजराती साखी साहित्य – डॉ. रानु मुखर्जी, पृ. ६३

१९ गुजरातिओए हिन्दी साहित्य मां आपेलो फालो – डाह्याभाई, पृ. ५७

२०. प्रवीण सागर, लहर ७६ छंद १८

२१. कच्छ की व्रजभाषा पाठशाला – डॉ. निर्मला असनानी, पृ. ३१५

२२ देखिए : कविश्वर दलपतराय – महाकवि नानालाल

२३. देखिए : कच्छना सतो अने कवियों – दुलेराम काराणी

२४ गुजरातिओए हिन्दी साहित्य मां आपेलो फालो – डाह्याभाई, पृ. १७

२५. देखिए : डॉ. अंबाशंकर नागर – अभिनंदन ग्रंथ, पृ. ११७

२६. वही – पृ. ३४८

२७. वही – पृ. ३५०

२८. मध्यकालीन हिन्दी–गुजराती साखी साहित्य – डॉ. रानु मुखर्जी, पृ. ७८

२९. दयाराम सतसई – संपा. डॉ. अंबाशंकर नागर, पद – ११७

३०. देखिए : गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. रमणलाल पाठक, पृ. ७९